Four Year Under Graduate Programme (FYUGP)

As per provisions of NEP-2020

Vinoba Bhave University, Hazaribag

Subject- Political Science

IRC- INTRODUCTORY REGULAR COURSE

INTRODUCTORY POLITICAL SCIENCE

Model Question with Answer

अति लघुउत्तरीय प्रश्न–

1. अरस्तू की दृष्टि में राजनीति का क्या सार है?

उत्तर– अरस्तू की दृष्टि में राजनीति का सार समान लोगों की भागीदारी में है जिससे जीवन में मानवीय श्रेष्ठता की प्राप्ति हो सके।

2. राज्य के चार तत्व कौन–कौन से हैं?

उत्तर– राज्य के चार तत्व– जनसंख्या, निश्चित भू–भाग, सरकार और संप्रभुता हैं।

3. अब्राहम लिंकन के द्वारा कही गयी प्रजातंत्र की प्रसिद्ध परिभाषा क्या है?

उत्तर– प्रजातंत्र शासन का वह रूप है जिसमें जनता का, जनता के द्वारा और जनता के लिए शासन हो।

4. संविधान से आप क्या समझते हैं?

उत्तर– संविधान उन लिखित या अलिखित नियमों अथवा कानूनों का समूह होता है जिसके द्वारा सरकार का संगठन, सरकार की शक्तियों का विभिन्न अंगों में वितरण और इन शक्तियों के प्रयोग के सामान्य सिद्धान्त निश्चित किये जाते हैं।

5. दबाव समूह से आप क्या समझते हैं?

उत्तर– दबाव समूह विशेष हितों के साथ जुड़े हुए ऐसे शक्ति संगठन होते हैं जो अपने सदस्यों के हितों की रक्षा हेतु सार्वजनिक नीतियों को प्रभावित करने की चेष्टा करते रहते हैं।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. लोकप्रभुता की प्रकृति पर प्रकाश डालें।

Through the light on the nature of Popular Sovereignty.

लोकप्रभुता का विचार आधुनिक लोकतंत्र का आधारभूत सिद्धान्त है। इस धारणा के अनुसार अंतिम प्रभुसत्ता जनता में निहित होती है। लोकप्रभुता के विचार को मध्ययुग में मार्सिलियो ऑफ पेडुवा और विलियम ऑफ ओकम आदि विचारकों के द्वारा जन्म दिया गया। परन्तु इस धारणा का प्रमुख प्रतिपादक रूसो है, जिसने सामान्य इच्छा को ही लोकप्रभुता माना है। सामान्य इच्छा से रूसो का तात्पर्य सबकी इच्छा के उस भाव से था, जिसमें सामान्य हित निहित हो। 19वीं सदी में जनतंत्र के विकास के साथ–साथ लोकप्रभुता के सिद्धान्त को भी लोकप्रियता मिली। आजकल तो निर्विवाद रूप से यह स्वीकार कर लिया गया है कि राजनीतिक सत्ता का अंतिम संरक्षण जनता के हाथों में ही है। और जैसा कि ब्राईस ने कहा है कि आधुनिक युग में लोकप्रभुता, लोकतंत्र का आधार बन चुकी है। परंतु लोकप्रभुता के सिद्धान्त के प्रतिपादक स्पष्ट रूप से यह नहीं बताते कि जनता शब्द से उनका तात्पर्य क्या है? एक अर्थ में नवजात शिशु से लेकर मृतपाय व्यक्ति तक, निम्नतम अपराधी से लेकर आदर्शतम नागरिक तक सभी इस शब्द के अंतर्गत आ जाते हैं। दूसरे अर्थ में इस शब्द में केवल उन्हीं व्यक्तियों का बोध होता है जिनमें राजनीतिक चेतना हो, जो उत्तरदायित्वपूर्ण हो, जिन्हें मताधिकार प्राप्त हो और जो जनसंख्या के बहुमत के निर्माण करते हों। **प्रथम अर्थवाली** जनता को प्रभु मानना तो कोरी मूर्खता होगी। इसप्रकार लोकप्रभुता से केवल मताधिकार प्राप्त जनसंख्या के बहुमत का ही बोध हो सकता है। और इस अर्थ में राजनीतिक प्रभुता तथा लोक प्रभुता में कोई अंतर नहीं रह जाता। इसलिए गार्नर ने लिखा है कि लोकप्रिय संप्रभुता का अर्थ निर्वाचक समूह की जनसंख्या की शक्ति से अधिक कुछ नहीं होता और यह उन्हीं देशों में संभव है, जिनमें व्यापक मताधिकार की प्रणाली प्रचलित करने के लिए वैध

रूप से स्थापित मार्गों के द्वारा उनकी इच्छा को व्यक्त प्रसारित करने के लिए क्रियान्वित होती है।

डॉ0 आर्शीवादम के अनुसार– लोकप्रभुता के सिद्धान्त में निम्न गुण विशेष उल्लेखनीय है–

1. शासन का अस्तित्व जनहित के लिए होता है।
2. यदि जानबूझकर जन इच्छाओं की अवहेलना की जाती है तो क्रांति की संभावना उत्पन्न हो जाती है।
3. जनमत की अभिव्यक्ति के लिए सरल वैधानिक साधनों की व्यवस्था होनी चाहिए।
4. निश्चित अवधि के बाद चुनाव, स्थानीय स्वायत्त शासन, लोकनिर्णय, आंरभक और प्रत्याह्वन द्वारा सरकार जनता के प्रति प्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायी होनी चाहिये।
5. शासन के द्वारा अपनी शक्तियों का प्रयोग संविधान द्वारा निर्धारित सीमाओं के अंतर्गत ही किया जाना चाहिए, स्वेच्छाचारिता से नहीं।

इसप्रकार लोकप्रभुता न केवल शास्त्रीय राजनीति विज्ञान का एक महत्वपूर्ण विषय था, बल्कि राजनीति विज्ञान के भविष्य में भी लोकतंत्र का आधार प्रस्तुत करेगा।

2. प्रजातंत्र में राजनीतिक दलों का महत्व पर प्रकाश डालें।

Discuss the importance of Political Party in Democracy.

प्रजातंत्रात्मक शासन व्यवस्था के प्रमुख रूप में दो प्रकार होते हैं– प्रत्यक्ष प्रजातंत्र और अप्रत्यक्ष या प्रतिनिध्यात्मक प्रजातंत्र। वर्तमान समय में राज्यों की विशाल जनसंख्या और क्षेत्र के कारण विश्व के सभी राज्यों में प्रतिनिध्यात्मक प्रजातंत्रीय शासन ही प्रचलित है। इस शासन–व्यवस्था में जनता अपने प्रतिनिधियों को चुनती है और प्रतिनिधियों के द्वारा शासन किया जाता है। इस शासन व्यवस्था की समस्त प्रक्रिया राजनीतिक दलों के आधार पर ही संपन्न होती है। प्रजातंत्र में राजनीतिक दलों के महत्व को निम्न रूपों से स्पष्ट किया जा सकता है–

1. प्रजातंत्र शासन लोकमत पर आधारित होता है और स्वस्थ लोकमत के अभाव में सच्चे प्रजातंत्र की कल्पना असंभव है। इस लोकमत के निर्माण तथा उसकी अभिव्यक्ति राजनीतिक दलों के आधार पर ही संभव है।

2. राजनीतिक दल चुनाव के संचालन के लिए आवश्यक है। प्रतिनिध्यात्मक शासन व्यवस्था में राजनीतिक दल अपने दल की ओर से उम्मीदवारों को खड़ा करते हैं और उनके पक्ष में प्रचार करते हैं। यदि राजनीतिक दल न हो तो आज के विशाल लोकतंत्रात्मक राज्यों में चुनाव का संचालन लगभग असंभव ही है।

3. प्रजातंत्र के लिए यह आवश्यक है कि देश के शासन में जनता के सभी वर्गों को प्रतिनिधित्व प्राप्त होना चाहिए और इस बात को राजनीतिक दलों द्वारा ही संभव बनाया जाता है। दलों के माध्यम से समाज के सभी वर्गों को प्रतिनिधित्व प्राप्त हो जाता है।

4. राजनीतिक दल सरकार के निर्माण तथा संचालन के लिए आवश्यक है। निर्वाचन के बाद राजनीतिक दलों के आधार पर ही निर्माण करना संभव होता है और यह बात संसदात्मक और अध्यक्षात्मक दोनों ही प्रकार के शासन व्यवस्थाओं के संबंध में नितांत सत्य है। राजनीतिक दलों के अभाव में व्यवस्थापिका के सदस्य अपनी–अपनी डफली अपना–अपना राग की प्रवृति को अपना लेंगे और सरकार का निर्माण असंभव हो जाएगा। न केवल सरकार के निर्माण बल्कि व्यवस्थापिका और कार्यपालिका में संबंध स्थापित कर राजनीतिक दल सरकार के संचालन को भी संभव बनाते हैं।

5. राजनीतिक दल शासन–व्यवस्था को मर्यादित रखते हैं। प्रजातंत्र आवश्यक रूप से सीमित शासन होता है, लेकिन यदि प्रभावशाली विरोधी दल का अस्तित्व न हो तो प्रजातंत्र असीमित

शासन में बदल जाता है। यदि बहुमत प्राप्त राजनीतिक दल शासन सत्ता के संचालन का कार्य करता है, तो विरोधी दल के रूप में कार्य करते हुए राजनीतिक दल शासन व्यवस्था को संचालित करते हैं। इस दृष्टि में राजनीतिक दल प्रजातंत्र में विपक्षी दल के रूप में भी कार्य करती है।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

राज्य की उत्पति और विकास के विभिन्न सिद्धान्तों का वर्णन करें।

Discuss the various theories of the origin and development of state.

राज्य राजनीति विज्ञान का प्रमुख और महत्वपूर्ण विषय है। राज्य की उत्पति का प्रश्न सदैव से विवादित रहा है। अनेक विचारकों के द्वारा राज्य की उत्पति के अलग–अलग सिद्धान्त बताये है। इनमें दैवीय उत्पति का सिद्धान्त सर्वाधिक प्राचीन तथा राज्य की उत्पति का विकासवादी सिद्धान्त सर्वाधिक तर्कपूर्ण एवं सही माना जाता है। हम राज्य की उत्पति, स्त्रोत एवं समय को नहीं जानते। गिलक्राइस्ट का कहना है कि राजनीतिक चेतना के उदय से संबंधित परिस्थितियों के विषय में हमें कम या कदाचित ज्ञान नहीं है। जहाँ इतिहास असफल हो जाता है वहाँ हम कल्पना का आश्रय लेते हैं।

राज्य की उत्पति राजनीति विज्ञान की एक अनसुलझी गुत्थी है। इस विषय में लेखकों के अलग–अलग विचार हैं कुछ लेखक इसे मनुष्य में निहित राजनैतिक चेतना का परिणाम मानते हैं। गार्नर के अनुसार– वे परिस्थितियाँ जिनमें मानव में प्रथमतः राजनैतिक चेतना का अनुभव किया और उससे प्रेरित होकर राजनैतिक संगठन के अधीन होते हुए राज्य की उत्पति की ओर आगे बढ़े इतिहास के काल–खण्डों में हुई घटनाओं और परिस्थितियों के अनुसार राज्य की उत्पति के अनेक सिद्धान्त प्रतिपादित हुए।

राज्य के उत्पति के कई सिद्धान्त हैं, जिसमें निम्नलिखित महत्वपूर्ण हैं।

1. दैवी सिद्धान्त– राज्य की उत्पत्ति के संबंध में दैवी सिद्धान्त सबसे अधिक प्राचीन है। इस सिद्धान्त के अनुसार राज्य मानवीय नहीं वरन् ईश्वर द्वारा स्थापित एक दैवीय संस्था है। ईश्वर या तो यह कार्य स्वयं की करता है या इस संबंध में अपने किसी प्रतिनिधि की नियुक्ति करता है। राजा ईश्वर का प्रतिनिधि होने के नाते केवल उसी के प्रति उत्तरदायी होता है और राजा की आज्ञाओं का पालन प्रजा का परम पवित्र धार्मिक कर्त्तव्य है।

विविध धर्म ग्रंथों में राज्य की उत्पति के दैवी सिद्धान्त का सर्मथन किया गया है। यहूदी धर्म की प्रसिद्ध पुस्तक ओल्ड टेस्टामेंट में राजा को ईश्वर का प्रतिनिधि माना गया है। इस्लाम, यहूदियों और बाईबिल में भी दैवीय सिद्धान्त का समर्थन किया गया है। महाभारत, मनुस्मृति आदि प्राचीन भारतीय ग्रंथों में यह प्रतिपादित किया गया है कि राजा का निर्माण इन्द्र, मित्र, वरूण, यम आदि देवताओं के अंश को लेकर हुआ है और राजा मनुष्य के रूप में एक महती देवता होता है।

इस सिद्धान्त का सबसे प्रबल समर्थन 17वी सदी के स्टुअर्ट राजा जेम्स प्रथम द्वारा अपनी पुस्तक लॉ आफ मोनारकी में किया गया। उसका प्रसिद्ध वाक्य है कि राजा लोग पृथ्वी पर ईश्वर की जीवित प्रतिमाएँ हैं। इसके बाद राबर्ट फिल्मर और बूजे के द्वारा भी इस सिद्धान्त का समर्थन किया गया।

दैवीय उत्पति सिद्धान्त के आधारभूत सिद्धान्त –

1) राजा की शक्ति का जन्म ईश्वर के द्वारा हुआ है, ईश्वर ही राजाओं को शक्ति प्रदान करता है।

2) राज्य मानवीय कृति नहीं है वरन् ईश्वरीय सृष्टि है।

3) जिसप्रकार से ईश्वर जो करता है वह अपनी सृष्टि के लिए करता है, उसी प्रकार राजा के समस्त कार्य प्रजा हित में होते हैं।

4) राजसत्ता पैतृक होती है अतः पिता के बाद पुत्र इसका अधिकारी होता है।

5) राजा प्रजा के प्रति उतरदायी न होकर ईश्वर के प्रति उतरदायी है।

आलोचना–राज्य के उत्पति का दैवी सिद्धान्त लंबे समय तक प्रचलित रहा, किन्तु आज के वैज्ञानिक और प्रगतिशील संसार में इसे स्वीकार कर दिया गया है। वस्तुतः सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दोनों ही आधारों पर यह सिद्धान्त त्रुटिपूर्ण है। यह सिद्धान्त तर्क या प्रमाणों पर आधारित नहीं है।

1) राज्य एक मानवीय संस्था है न कि दैवीय संस्था है।

2) यह सिद्धान्त निरंकुश शासन को जन्म देनेवाला है।

3) यह सिद्धान्त तर्कवाद के विरूद्ध अंधविश्वास पर आधारित है।

4) यह सिद्धान्त रूढ़िवाद, आडम्बर पर बल देता है।

5) यह सिद्धान्त पूर्णतः अवैज्ञानिक है।

महत्त्व–प्रारंभिक काल में जब मनुष्य अपने जीवन के प्रत्येक अंग को धर्म से संबद्ध समझता था, तो यह सिद्धान्त अत्यन्त मूल्यवान सिद्ध होता था। राज्य के दैवीय संस्था और राजा को ईश्वर का प्रतिनिधि बताकर इस सिद्धान्त ने प्रारंभिक व्यक्ति को राजभक्ति के आज्ञापालन का पाठ पढ़ाया। इस सिद्धान्त के द्वारा एक व्यवस्थित जीवन की नींव रखी गई। यह सिद्धान्त राजनीतिक व्यवस्था के नैतिक आधार पर जोर देता है।

2. राज्य की उत्पति का पितृसत्तात्मक एवं मातृसत्तात्मक सिद्धान्त– अरस्तु, हेनरी मेन, लीकॉक आदि की राय में राज्य की उत्पति परिवार से हुई है। पारिवारिक परिवेश में आज्ञा पालन सत्ता आदि के रूप में देखा जा सकता है। अरस्तु के अनुसार राज्य, परिवार और ग्रामों का समुदाय है जिसका लक्ष्य पूर्ण और आत्मनिर्भर जीवन है। अरस्तु के अनुसार जब अनेक परिवार संयुक्त हो जाते हैं तो ग्राम आत्मनिर्भर जीवन है। अरस्तु के अनुसार जब अनेक परिवार संयुक्त हो जाते हैं तो ग्राम का निर्माण होता है, अर्थात् ग्राम से ही राज्य की उत्पति होती है। इस सिद्धान्त के दो पक्ष है– पितृसत्तात्मक सिद्धान्त और मातृसत्तात्मक सिद्धान्त।

पितृसत्तात्मक सिद्धान्त – इस सिद्धान्त का उल्लेख हमें यूनान, रोम और यहूदियों के प्राचीन इतिहास में देखने को मिलता है। इस सिद्धान्त के प्रमुख समर्थक हेनरी मेन हैं। यहुदियों की धार्मिक पुस्तक ओल्ड टेस्टामेंट, बाईबिल, रोम और भारत में भी यह सिद्धान्त देखने को मिलता है। हेनरी मेन के अनुसार प्राचीन प्राचीन समाज में समाज परिवारों का समूह था और उस परिवार का सबसे बृद्ध व्यक्ति परिवार का मुखिया होता था। पहला परिवार पुरूष, उसकी स्त्री और बच्चे थे। धीरे–धीरे परिवारों की संख्या में वृद्धि होती गई, परन्तु परिवारों पर मूल परिवार के मुखिया का अधिकार बना रहा। उसके उतराधिकारी का भी इन परिवारों पर नियंत्रण बना रहा। धीरे–धीरे पितृ प्रधान परिवार का विकास हुआ। परिवार से गोत्र और गोत्र से कबीलों का निर्माण हुआ और कबीलों से राज्य की उत्पति हुई। कबीले का सबसे बृद्ध व्यक्ति मुखिया का चुनाव करता था। लीकॉक ने परिवार से राज्य के विकास को इस प्रकार व्यक्त किया है पहले एक गृहस्थी, उसके बाद एक पितृ प्रधान परिवार उसके पश्चात् एक वंश के लोगों का कबीला और अंत में एक राज्ट्र है।

पितृसत्तात्मक सिद्धान्त के प्रमुख सिद्धान्त–

1. परिवार का पैट्रियार्क मुखिया पुरूष था।
2. परिवार की वंश परंपरा पिता से चलती थी।

3. परिवार में विवाह प्रथा स्थाई थी कही बहुपत्नी, कही पर एकल पत्नी प्रथा थी।

4. रक्त संबंध परिवार के सदस्यों की एकता की मुख्य सूत्र था।

5. परिवार में मुखिया की शक्तियां निरपेक्ष थी।

6. राज्य के विकास आधार पितृ प्रधान व्यवस्था थी।

पितृसत्तात्मक सिद्धान्त की आलोचना के निम्नलिखित आधार हैं।

1. यह व्यवस्था पूरे विश्व में विद्यमान नहीं थी। एशिया और आस्ट्रेलिया में तो मातृ प्रधान व्यवस्था के उदाहरण मिलते हैं।

2. मार्गन, मैक्सवेल आदि के अनुसार प्रारंभिक सामाजिक इकाई कबीला थी। कबीला टूटने पर गौत्र और गौत्र से परिवार का निर्माण हुआ। इनके अनुसार वंश स्त्री से चलता था, पुरूष से नहीं।

3. अत्यन्त सरल– यह एक सरल सिद्धान्त है जबकि राज्य की उत्पति जटिल विकास का परिणाम है, जिसमें अनेक छोटे और बड़े तत्वों का योगदान है।

4. यह सिद्धान्त राजनीतिक कम और समाजशास्त्रीय अधिक लगता है।

महत्व– इन सभी आलोचनाओं के बाद भी यह कहना निरर्थक है कि इसमें सत्य का कोई अंश नहीं है। राज्य की उत्पति का विकासवादी सिद्धान्त भी इस बात को स्वीकार करता है कि राज्य के विकास में रक्त संबंध का अत्यधिक महत्व रहा है। समाज में परिवार संगठन, एकता की प्रमुख इकाई थी।

मातृसत्तात्मक सिद्धान्त– इस सिद्धान्त के प्रमुख समर्थक मैकलेनन, मॉर्गन और जंक्स है। इन व्याख्याकारों ने अपनी पुस्तकों में इस सिद्धान्त की व्याख्या की है। मातृ प्रधान सिद्धान्त के समर्थकों का मानना है कि प्राचील समाज में स्थाई विवाह की संस्थाएं नहीं थी। समाज में बहुपतित्व की व्यवस्था थी। इस व्यवस्था में नारी के अनेक पति होते थे उनकी होनेवाली संतानों को पिता नहीं माता के कुल के नाम से जाना जाता था। संपति और सत्ता के अधिकारिणी माता होती थी। इस व्यवस्था के विकास ने आगे आकर राज्य को जन्म दिया।

आलोचना– मातृसत्तात्मक सिद्धान्त अत्यन्त सरलीकृत सिद्धान्त है। इस आधार पर इतिहास में मातृप्रधान और पितृप्रधान दोनों समाज के उदाहरण मिलते हैं। राज्य की उत्पति का यह राजनैतिक से ज्यादा सामाजिक सिद्धान्त लगता है। इस सिद्धान्त में अन्य तत्वों की उपेक्षा मिलती है।

महत्त्व– इस सिद्धान्त का महत्व भी पितृसत्ता सिद्धान्त के समान है। रक्त संबंध राज्य के विकास का महत्वपूर्ण बिन्दु है जिसका यह सिद्धान्त निरूपण करता है।

3. राज्य की उत्पति का शक्ति सिद्धान्त– इस सिद्धान्त के अनुसार राज्य की उत्पति का एकमात्र कारण शक्ति है। राज्य का उदय शक्तिशाली व्यक्तियेां के द्वारा निर्बल व्यक्तिों को अपने अधीन करने की प्रकृति के कारण हुआ। दूसरे शब्दों में युद्ध राज्य की उत्पति का प्रमुख कारण था, युद्ध के विजेता शासक और पराजित प्रजा बन गए। ब्लंशली इस मत का समर्थन करता है कि शक्ति के बिना न कोई राज्य जीवित रहता है और न जीवित रह सकता है। इस प्रकार युद्ध शक्ति को पैदा करता है और शक्ति राज्य को जन्म देती है तथा शक्ति ही इसे कायम रखती है। बिस्मार्क के अनुसार राज्य का आधार रक्त और लोहा होना चाहिए। ट्रिस्के के अनुसार राज्य में आक्रमण करने और रक्षा करने की जनशक्ति है। राज्य की उत्पति का शक्ति सिद्धान्त का वाल्टेयर, जैक्स भी समर्थन करते हैं।

इस संदर्भ में शक्ति सिद्धान्त की निम्नलिखित विशेषताएँ सामने आती हैं–

1. शक्ति राज्य की उत्पति का एकमात्र आधार है।
2. शक्ति का आशय भौतिक और सैनिक शक्ति से है।
3. प्रभुत्व की लालसा और आक्रामकता, मानव स्वभाव का अनिवार्य घटक है।
4. प्रकृति का नियम है कि शक्ति ही न्याय है।
5. प्रत्येक राज्य में अल्पसंख्यक शक्तिशाली शासन करते है और बहुसंख्यक शक्तिहीन अनुकरण करते हैं। वर्तमान में राज्यों का अस्तित्व शक्ति पर ही केन्द्रित है।

शक्ति सिद्धान्त की आलोचना– राज्य के शक्ति सिद्धान्त की निम्नलिखित आधार पर आलोचना की जाती है–

1. शक्ति राज्य की उत्पति का एकमात्र तत्व नहीं है। यद्यपि इसने राज्य की उत्पति में प्रमुख भूमिका का निर्वाह किया परन्तु इसकी उत्पति के अन्य कारण चेतना, धर्म, रक्त संबंध आदि भी रहे।
2. टी0 एच0 ग्रीन के अनुसार राज्य की उत्पति का आधार इच्छा है न कि शक्ति। लोगों की इच्छा के बिना न तो राज्य संगठित हो सकता है और न कायम रह सकता है। लोग राज्य के आदेशों का पालन शक्ति के भय से नहीं, अपने विवेक और बुद्धि से करते हैं।

3. शक्ति सिद्धान्त जिसकी लाठी उसकी भैंस जैसे सिद्धान्तों को जन्म देता है जिसका अर्थ है कि सिर्फ बलशाली को जीवित रहने का अधिकार है।

4. यह सिद्धान्त राज्य को निरंकुश बनाता है, जिसके लोगों की स्वतंत्रता का लोप और जनतंत्र का विनाश होता है।

5. यह सिद्धान्त अन्तर्राष्ट्रीय शांति और विश्व बंधुत्व का विरोधी है, शक्ति पर ही जोर देने के कारण यह एक साम्राज्यवादी सिद्धान्त है।

6. यह सिद्धान्त केवल भौतिक शक्ति पर जोर देता है। आधुनिक युग में आध्यात्मिक, तकनीकी और वैधानिक शक्ति को भी महत्व दिया जाता है।

शक्ति सिद्धान्त की महत्व– इन आलोचनाओं के अनुसार राज्य की उत्पति में शक्ति सिद्धान्त मान्य नहीं है, परन्तु राज्य के जन्म और विकास में शक्ति की भूमिका महत्वपूर्ण भूमिका रही है। प्राचीन समय में अराजक समाज को संगठित करने में तथा अनुशासन और आज्ञापालन का भाव शक्ति के कारण ही आया। आधुनिक समय में भी जब राज्य शक्तिशाली नही होते है तो अराजकता और विघटन का शिकार हो जाते हैं।

4. राज्य की उत्पत्ति का विकासवादी सिद्धान्त– राज्य के विकासवादी सिद्धान्त अनुसार राज्य न तो दैवीय कृति है, न वह शक्ति या युद्ध से उत्पन्न हुआ है और न ही वह व्यक्तियों के बीच परस्पर समझौते का परिणाम है। इस सिद्धान्त के अनुसार, राज्य कोई कृत्रिम संस्था नहीं वरन् एक स्वाभाविक समुदाय है। ऐतिहासिक या विकासवादी सिद्धान्त ही राज्य की उत्पति की सही व्याख्या प्रस्तुत करता है। राज्य की उत्पति के संबंध में प्रतिपादित दैवीय सिद्धान्त, शक्ति सिद्धान्त, पैतृक तथा मातृक सिद्धान्त तथा सामाजिक समझौता सिद्धान्त, इस मान्यता पर आधारित हैं कि राज्य की उत्पति किन्हीं विशेष परिस्थितियों में अथवा किसी विशेष समय पर हुई है।

इसी कारण ये सभी सिद्धान्त स्वीकार नहीं किये गये है। यह सिद्धान्त बताता है कि राज्य विकास का परिणाम है, निर्माण का नहीं। आदिकालीन समाज से क्रमिक विकास करते–करते इसने वर्तमान राष्ट्रीय राज्यों के स्वरूप को प्राप्त कर लिया है।

इस संबंध में डॉ0 गार्नर का कथन सत्य ही है कि राज्य न तो ईश्वर की कृति है न वह उच्चकोटि के शारीरिक बल का परिणाम है, न किसी प्रस्ताव या समझौते की कृति है और न परिवार का ही विस्तृत रूप है। यह तो क्रमिक विकास से उदित एक ऐतिहासिक संस्था है।

विकासवादी सिद्धान्त यह कहता है कि राज्य का एक विशेष काल में जन्म नहीं हुआ बल्कि इसका तो धीरे–धीरे परिस्थितियों वश विकास हुआ है। कुछ विद्वानों के अनुसार राज्य के विकास का यह क्रम इसप्रकार है–

1. परिवार– मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और सामाजिकता के कारण वह सबसे पहले एक परिवार के रूप में संगठित हुआ होगा। इस तरह परिवार एकाकी व्यक्ति से राज्य तक की संस्थागत यात्रा का पहला कदम है। यह परिवार राज्य का शुरू का स्वरूप है। इसमें राज्य के लगभग सारे गुण मौजूद हैं।

2. कुटुम्ब– समाज के विकास का दूसरा सोपान कुटुम्ब अथवा कबीला है। परिवार बढ़ाकर जब इसमें विभिन्न शाखाएं विकसित हो जाती हैं तो कुटुम्ब अथवा कबीला हो जाता है। इसमें परिवार से विस्तृत रिश्तों के लोग शामिल होते हैं तो रक्त संबंध से जुड़े होते हैं, ये कबीले पहले बंजारा जीवन बिताते थे। इनका सरदार होता था, जो राजा का पहले का रूप होता हैं।

3. गाँव– पहले समाज का प्रमुख व्यवसाय पशुपालन या पशुचराना या शिकार था। तब घास और शिकार की खोज में ये कबीले घूमा करते थे, बाद में कृषि का विकास हो जाने से एक स्थान पर बसने लगे। जिससे ग्राम संस्था का विकास हुआ। इसमें भी राज्य के सभी मूलभूत लक्षण मौजूद रहते हैं। हालांकि इसमें कई जातियों तथा परिवार के कुटुम्ब, कबीलों के लोग मिलकर रहते हैं। इनका मुखिया राजा का पूर्ववर्ती रूप होता है।

4. शहर– छोटे ग्राम धीरे–धीरे तरक्की कर बड़े–बड़े ग्राम बन गये। इन्होंने कस्बों का रूप धारण किया। आगे चलकर इन्हीं से राजनीतिक चेतना के परिणामस्वरूप नगर राज्य का विकास हुआ। ये छोटे–छोटे नगर का विकास हुआ। ये छोटे–छोटे नगर आर्थिक सामाजिक दृष्टि से स्वावलंबी होकर इनमें राजा के पद की स्थापना हुई अथवा सरकार का अन्य स्वरूप विकसित हुआ। ये छोटे–छोटे राज्य थे।

5. साम्राज्य– परिवार से शुरू होकर आधुनिक राज्य तक की विकास यात्रा की विकास यात्रा में नगर राज्य के बाद साम्म्रज्य का विकास पहले हुआ। यह ऐसे हुआ कि आगे चलकर नगर राज्य के योद्धा राजाओं ने अन्य पास के छोटे–छोटे नगर राज्यों को जीतकर महान यूनान रोमन साम्राज्य बेवीलोन, मगध राज्य जैसे विशाल साम्राज्यों को जन्म दिया। इनके विकास में सिकंदर, सीजर, समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त और चोल जैसे राजाओं की प्रमुख भूमिका रही।

राज्य के तत्त्व– राज्यों की एक समय में उत्पति हुई, बाद में धीरे–धीरे विकास हुआ। राज्य के विकास में निम्न सहायक तत्वों की प्रमुख भूमिका थी।

1. सामाजिक प्रवृति– राज्य के विकास में सामाजिक चेतना की भी प्रमुख हाथ था। सामाजिक चेतना ने उसे समाज का सुयोग्य नागरिक बनाया था तथा विभिन्न समुदायों में बांटा व राज्य को इन समुदायों ने मदद की।

2. राजनीतिक चेतना– मनुष्य एक राजनीतिक प्राणी है और उसमें एक राजनीतिक चेतना होती है। यह राजनीतिक चेतना समाज में व्यक्तियों को एक सूत्र में बांधकर शासन की स्थापना तथा शासन की आज्ञा मानने व शासन के कार्यों में भाग लेने, अधिकार कर्त्तव्यों का पालन करने हेतु प्रेरित करते हैं।

3. आर्थिक गतिविधियाँ– मनुष्य में एक आर्थिक चेतना होती है, जो आर्थिक क्रियाकलाप व आर्थिक कार्यों हेतु मनुष्य में एक आर्थिक चेतना होती है, जो आर्थिक क्रियाकलाप व आर्थिक कार्यों हेतु प्रेरित करती हैं। वह वस्तुओं को खरीदता व आवश्यकता से अधिक वस्तुओं को बेचकर धन कमाकर अन्य जरूरत की वस्तुएं खरीदता है। इससे समाज का आर्थिक जीवन संगठित होता है।

4. शक्ति– राज्य के विकास तथा उसकी रक्षा में शक्ति ने भी प्रमुख भूमिका निभाई हैं। इस बात के इतिहासा में कई प्रमाण उपलब्ध हैं।

5. रक्त संबंध– रक्त संबंधों ने उक्त विकास क्रम में परिवार, कुटुम्ब, कबीले के विकास में प्रमुख भूमिका निभाई क्योंकि ये सभी रक्त संबंधों में बंधे होते हैं।

6. धर्म– राज्य के प्रारंभिक स्वरूप के विकास में धर्म की भी प्रमुख भूमिका थी। धर्म ने ही सबसे पहले जंगली मनुष्यों को मर्यादित किया। इस संबंध में पुरोहित, जादू–टोना, ओझा की महत्ता रही। ये मनुष्य को अलौकिक शक्ति का भय दिखाकर मर्यादित अथवा नियमित करके कुछ नियम कानून मनवाते थे।

राज्य की उत्पति विकासादि सिद्धान्त की समीक्षा

यह एक माना हुआ तथ्य है कि आधुनिक युग में राज्य की उत्पति का विकासवादी सिद्धान्त माना जाता है, क्योंकि यह सिद्धान्त तार्किक दृष्टि से उत्तम है। यह सिद्धान्त सिद्ध कर देता है कि राज्य न तो शक्ति की उपज है और न इसे ईश्वर ने बनाया है। यह सिद्धान्त सामाजिक समझौते की तरह काल्पनिक भी नहीं है। इसके सिद्धान्त के अनुसार राज्य की उत्पति मनुष्य की सामाजिकता व सहयोग की स्वाभाविक प्रवृति का परिणाम हैं।

यह सिद्धान्त इसलिए भी मूल्यवान है क्योंकि यह राज्य को एक प्राकृतिक संस्था मानता हैं, जिसका धीरे–धीरे विकास हुआ है।

यह सिद्धान्त इसलिए भी मूल्यवान है क्योंकि यह राज्य को एक प्राकृतिक संस्था मानता है, जिसका धीरे–धीरे विकास हुआ है।

राज्य की उत्पति के संबंध में दो प्रकार के दृष्टिकोण प्रचलित हैं– परंपरावादी और आधुनिक। दैवी उत्पति का सिद्धान्त, शक्ति सिद्धान्त आदि परंपरावादी दृष्टिकोण है और आधुनिक दृष्टिकोण दो प्रकार के हैं– प्रथम, उदारवादी और द्वितीय मार्क्सवादी दृष्टिकोण। उदारवादी दृष्टिकोण में दो सिद्धान्त महत्वपूर्ण है– सामाजिक समझौते का सिद्धान्त, जिसका प्रतिपादन हॉब्स, लॉक तथा रूसो ने किया और विकासवादी सिद्धान्त जिसका प्रतिपादन बेजहाट, स्पेंसर, गिडिंग्स, लोवी आदि लेखकों ने किया। आज सभी उदारवादी लेखक, जिनमें गार्नर और मेकाईवर भी शामिल हैं, राज्य की उत्पति के संबंध में विकासवादी सिद्धान्त को ही मानते हैं। इसके विपरीत मार्क्स एंगेल्स, लेनिन आदि साम्यवादी लेखक राज्य की उत्पति के संबंध में वर्ग–व्यवस्था के सिद्धान्त को मानते हैं। उदारवादी और मार्क्सवादी लेखक वस्तुतः समान रूप से राज्य को एक विकासजन्य संस्था मानते हैं। मेकाईवर और एंगेल्स दोनों ही राज्य की उत्पति में रक्त, वंश, धर्म, शक्ति, आर्थिक कारणों और राजनीतिक चेतना के महत्व को कम या अधिक मात्रा में स्वीकार करते हैं।`